मौलाना सै० इब्ने हसन जारचवी साहब क़िब्ला

ख़ुमुस

इस्लामी बैतुलमाल की आमदनी के ज़रिये ज़कात व सदक़ात थे। दुनिया की तारीख़ पढ़ने से मालूम होता है कि वक़्त के बादशाह और हाकिम जिनका ख़ज़ानों पर क़ब्ज़ा होता है आहिस्ता-आहिस्ता उन ख़ज़ानों से ख़ुद भी फ़ायदा उठाने लगते हैं और उसको आम लोगों की भलाई और कामयाबी पर ख़र्च नहीं करते। इस्लाम ने इस ख़राबी को पूरी तरह बन्द करना चाहा। और ज़कात व सदक़ात की आमदनी रसूल[स०] पर जो उस वक़्त अमीरे इस्लाम थे और आले मुहम्मद[अ०] पर जिनको आगे चलकर अमीरे इस्लाम होना था बिल्कुल हराम कर दी। लेकिन रसूले इस्लाम[स०] भी इन्सान थे, फ़रिश्ता न थे। घर-बार रखते थे, बीवियाँ थीं, बच्चे थे और आगे भी जिनको इस्लाम का अमीर होना था उनका भी ज़िन्दगी की ज़रूरतों से ख़ाली होना ज़रूरी न था। इसलिए ज़कात के बजाए उनके लिए ख़ुमुस की आमदनी रखी गई। माले ग़नीमत या दफ़ीनों, कानों और दरियाओं से निकली हुई दौलत या साल भर के ख़र्च के बाद बचे हुए माल के पाँचवे हिस्से को ख़ुमुस कहते हैं और यह मुहम्मद[स०] व आले मुहम्मद[अ०] का हक़ है।

"जान लो कि जो कुछ तुमको माले ग़नीमत मिले उसका पाँचवां हिस्सा ख़ुदा के लिए और उसके रसूल के लिए, और उसके रिश्तेदारों के लिए और यतीमों और मिस्कीनों और मुसाफ़िरों के लिए है।"

(अनफ़ाल-41)

ख़ुमुस का मसअला उन मसाएल में से है जिन पर मुसलमानों ने बहुत बहस की है। यह तो सब मानते हैं कि ज़कात और दूसरे सदक़ात की आमदनी इसलिए थी कि उससे मुसलमानों का जमाअती निज़ाम क़ायम किया जाए, लोगों के फ़ायदे के लिए काम अन्जाम दिये जाएं और ज़रूरतमन्द लोगों की मदद हो सके। तो क्या सिर्फ़ आले मुहम्मद[अ०] सिर्फ़ इस जुर्म में कि वह रसूल मक़बूल[स०] के रिश्तेदार थे इस भलाई के ख़र्च से महरूम कर दिये गये जिससे सब मुसलमानों को फ़ायदा उठाने का हक़ हासिल था? क्या आले मुहम्मद[अ०] को ज़िन्दगी की कोशिशों में कभी मदद की ज़रूरत न पड़ती थी, क्या उनमें फ़क़ीर, मिस्कीन और मुसाफ़िर पैदा होने का इम्कान पूरी तरह ख़त्म हो गया था?

बेशक उन पर ज़कात हराम थी लेकिन उनके ग़रीब और मिस्कीन यानी मोहताज, मजबूर और लोगों के लिए जो अपने इल्मी कामों की वजह से रोज़ी नहीं कमा सकते थे, किसी और आमदनी के रास्ते की ज़रूरत थी यह रास्ता ख़ुमुस था।

ज़कात आले मुहम्मद[अ०] पर क्यों हराम थी? क्या इसलिए कि वह नजासत है, गंदगी है? तो फिर दूसरे मुसलमानों को इस गंदगी के खाने की क्यों इजाज़त थी? क्या आले मुहम्मद[अ०] दूसरे मुसलमानों से अफ़ज़ल व आला थे?

हाँ हाँ वह गंदगी थी और आले मुहम्मद[अ०] ही के लिए गंदगी थी। इसलिए कि उनको बैतुलमाल का पहरेदार होना था। उन पर इस आमदनी को हराम करके ख़ुदा ने हमेशा-हमेशा के लिए बैतुलमाल के रुपये को महफ़ूज़ रहने की ज़मानत कर दी।

अब चूँकि उनके ख़ानदान में भी ज़रूरतमन्द इन्सान हो सकते थे इसलिए ख़ुमुस से उनकी मदद का सामान किया। ख़ुमुस एक तरह कि इत्तेफ़ाक़ी आमदनी है जो खुले बंधों जंग के मैदान में या कानों और दरियाओं से निकली हुई दौलत से होती है और यह थोड़ी और इत्तेफ़ाक़ी आमदनी आले मुहम्मद[अ०] की ज़रूरत के लिए काफ़ी समझी गई।

ख़ुमुस के बारे में मुसलमानों के दो फ़िरक़ों में जो बहस ज़मानों से चली आ रही है वह असल में

हुकूमत और ख़िलाफ़त की बहस है। जब तक उसकी बुनियादी चीज़ (यानी हुकूमत) का फ़ैसला न हो ख़ुमुस पर बहस ही नहीं हो सकती। बेशक ख़ुमुस अल्लाह के रसूल[स०] का हक़ मन्सबे इमामत की हैसियत से थे और इसी मन्सब की हैसियत से ज़कात उन पर हराम थी। आप आले मुहम्मद[अ०] पर ज़कात तो हराम किये देते हैं और यह नहीं सोचते कि इसी हुरमत से उनके इमाम और बैतुलमाल की हिफ़ाज़त करने वाला होने का सुबूत मिलता है।

जब इस्लाम ने मुहम्मद[स०] व आले मुहम्मद[अ०] पर ज़कात हराम और ख़ुमुस जाएज़ कर रखा था उस वक़्त उसकी निगाहों में ये बात थी कि उनको इमामे उम्मत होना है। चूँकि ज़माने के इन्क़ेलाबों ने आले मुहम्मद[अ०] को बैतुलमाल की हिफ़ाज़त करने वाला न होने दिया, इसलिए अब सिर्फ "ख़ुमुस व ज़कात" के ज़बानी बहस व मुबाहसे बाक़ी रह गए हैं।(1)

कहा जा सकता है कि बैतुलमाल में सदक़ात के अलावा जिज़्या (टैक्स) और ख़िराज की आमदनी भी तो आती थी। मगर याद रखिये कि यह आमदनी ग़ैरमुस्लिमों से वुसूल होती थी। इस्लामी प्रोग्राम में यह आमदनी मुस्तक़िल न थी, अगर अरबी इम्पीरियलिज़्म के बजाए इस्लाम फैलता तो कुछ दिनों में यह आमदनी ख़त्म हो जाती। ख़लीफ़ा उमर इब्ने अब्दुल अज़ीज़ के ज़माने में जिज़्या की आमदनी इतनी कम हो गई थी कि उस वक़्त के हाकिम चिल्ला उठे थे। इस्लामी प्रोग्राम के मुताबिक़ किसी मुल्क में पहले इस्लाम फैलता है, फिर वहाँ इस्लामी निज़ामे हुकूमत क़ायम होता है। मगर अरबी इम्पेरियलिज़्म ने मुल्कों को फतह करने पर ज़ोर दिया, इसलिए यह आमदनियाँ बाक़ी रहीं। बल्कि तारीख़ तो यह बताती है कि इन आमदनियों के लिए इस्लाम की इशाअत को रोक दिया गया।

मुहम्मद[स०] व आले मुहम्मद[अ०] के प्रोग्राम में यह आमदनियाँ ग़ैर मुस्तक़िल और आरज़ी थीं। उनके सामने यह ख़याल था कि किसी मुल्क में इस्लाम की इशाअत से पहले वहाँ निज़ामे हुकूमते इस्लामी क़ायम ही नहीं हो सकता। वह तलवार के ज़ोर से नहीं बल्कि तरग़ीब व तहरीस के ज़रिये से इशाअते दीन करना चाहते थे।

हज

हज का नज़ारा देखने से ताल्लुक़ रखता है। लाखों आदमी हैं, कोई काला, कोई गोरा, कोई अमीर, कोई ग़रीब, कोई यूरोप और एशिया के बेहतरीन तहज़ीबी शहर से आया है, कोई अफ़्रीक़ा के जंगलों का रहने वाला है। यह सब एक ही तरह के सादा लिबास में हैं और एक ही आलमगीर ज़बान में *लब्बैक अल्लाहुम्मा लब्बैक* कह रहे हैं। यहाँ शाहो गदा, आक़ा और ग़ुलाम के फ़र्क़ ग़ायब हैं और मुल्की, रंगी और ज़बानी तफ़रक़ों का पता भी नहीं।

उम्र भर में कम से कम एक बार हर साहेबे हैसियत मुसलमान को इस मसावात परवर और अद्ल आफ़रीन इज्तेमाअ में शरीक होने और इस्लाम की हक़ीक़ी तालीम को अमली लिबास में देखने का मौक़ा मिलता है, और यह ख़ुशगवार मन्ज़र मालदार से मालदार इन्सान को भी यह समझाने के लिए काफ़ी है कि अल्लाह की नज़र में सारे इन्सान बराबर हैं, और मुल्की व तबक़ाती तफ़रीक़ें इन्सान की ख़ुद की बनाई हुई हैं।

हज़ारों साल ठोकरें खाने के बाद अक़वामे आलम क़ौमियत और वतनियत के महदूद दायरों से निकलने के सामान कर रही हैं, वह एक मरकज़ बनाने के लिए बेचैन हैं, एक ऐसी ज़बान ईजाद करना चाहती है जो पूरब से पच्छिम तक और उत्तर से दक्षिण तक ख़यालात के तबादले का ज़रिया बन सके। इस्लाम चौदह सौ साल पहले यह नज़रिया दुनिया के सामने अमल की सूरत में पेश कर चुका है। मग़रिब के मुफ़क्किर आज बैनुलअक़वामी इज्तेमाआत (International Conventions) में दुनिया की नजात देख रहे हैं, और यह हज सैकड़ों साल से दुनिया को बैनुलअक़वामी इत्तेहाद की तरफ दावत दे रहा है। मुसलमानों में जब तक रूहे इस्लाम बाक़ी रही यह हज का मौसम उनकी सियासी, तहज़ीबी और तिजारती तरक़्क़ी में बड़ा हिस्सा

(1) इस पूरी बहस का ख़ुलासा यह है कि आनहज़रत और उनके रिश्तेदारों पर सदक़ात इसलिए हराम थे कि बैतुलमाल में तसर्रुफ़ का इम्कान बाक़ी न रहे। आले मुहम्मद[अ०] पर हमेशा-हमेशा के लिए सदक़ात का हराम होना यह बताता है कि दीनी हुकूमत दाएमी तौर पर उनके के लिए तय हो चुकी थी।

लेता रहा। हर साल मक्के की सरज़मीन पर सारी दुनिया के अक़लमंद, ताजिर, आलिम और फ़ाज़िल लोग जमा होते थे और एक दूसरे के हालात व ज़रूरियात से वाक़िफ़ होकर मिल्लते इस्लामिया की कामयाबी और तरक़्क़ी के लिए एक साथ कोशिशें करने का मौक़ा पाते थे।

यह सरज़मीन थी जहाँ उलूम व फ़ुनून, अश्या (चीज़ों) व तिजारत, और अख़लाक़ व आदात का तबादला होता था। उस ज़माने में जब वसाएले सफ़र के वसाएल महदूद थे और आमदो रफ़्त इतनी आसान न थी, अहकामे इस्लाम का दूर दराज़ शहरों बल्कि मुल्कों तक फैल जाना इसी हज की बदौलत था। और आज भी इस मौक़े से फ़ायदा उठाकर हम ''मिल्लते इस्लामिया'' में ताज़ा रूह पैदा कर सकते हैं।

मक्कए मोअज़्ज़मा जहाँ बैनुलअक़वामी इज्तेमाअ़ होता है सिर्फ़ एक ही शहर ही नहीं है, बल्कि तौहीदे इलाही और हक़परस्ती का पुराना मरकज़ है। इसके ज़र्रे-ज़र्रे पर दीने फितरत की तारीख़ लिखी हुई है।

उस मुक़द्दस घर की जो आज पूरी दुनिया के लिए सजदागाह बना हुआ है पहले पहल आदम[अ०] ने बुनियाद डाली। फिर इब्राहीम[अ०] और इस्माईल[अ०] ने इसको दोबारा तामीर किया। आख़िर में तौहीद की दावत के सबसे बड़े दाई मुहम्मद रसूलुल्लाह[स०] ने इस जगह को रौनक़ बख़्शी और अली[अ०] जैसे ज़बरदस्त तौहीद परस्त ने ऐन ख़ाना-ए-काबा में विलादत पाई।

जब कोई हाजी उस सरज़मीन पर क़दम रखता है तो उस मक़ाम की पूरी तारीख़ उसकी नज़र के सामने आ जाती है, और वह महसूस करने लगता है कि मैं आज जिस मक़ाम पर सई व तवाफ में मशग़ूल हूँ इस पर बड़े-बड़े अम्बिया, आईम्मा और सुलहा के क़दम पहुँच चुके हैं और जिस ख़ाक पर मैं सजदा कर रहा हूँ वह दुनिया के बहुत से बड़े-बड़े इन्सानों की जबीने नियाज़ से मस हो चुकी है। इस तरह वह अपने आपको एक ऐसी आलमगीर बिरादरी का फ़र्द पाता है जिसका सिलसिला हज़ारों साल से जारी है और कौन जानता है कि कितने हज़ार साल तक जारी रहेगा।

Lady Evelyn Cobbold ने अपनी किताब (Pilgrimage to Mecca) में हज के बारे में नीचे दिये गये ख़यालात ज़ाहिर किये हैं:

''हज के असरात व नतीजे में मुबालग़े की गुन्जाइश नहीं। पूरी दुनिया से आने वाले लोगों को इस ज़बरदस्त इज्तेमाअ़ में जो इस मुबारक मौक़े पर मुक़द्दस जगह पर (जिसको तीन मज़हबों यानी यहूदियत, ईसाईयत और इस्लाम के जद्दे अमजद की याद ने मुक़द्दस बना दिया है) मुनअक़िद होता है शामिल होने और सबके साथ में ख़ुशूअ व ख़ुज़ूअ़ के साथ ख़ुदा की तकबीर व तारीफ़ करने के यह माने हैं कि इन्सान के दिल व दिमाग़ पर इस्लामी उसूल व अज़ाएम का मफ़हूम पूरे तौर पर नक़्श हो जाए और उसको इस सबसे ज़्यादा रूह परवर अमल में शामिल होने का फ़ख़्र हासिल हो जो इन्सान को कभी-कभी ही नसीब होता है।

मौलिदे इस्लाम (मक्का) की ज़ियारत, उस ज़मीन पर चलना जिसको हज़रत मुहम्मद के मुसीबत और परेशानी के दौर की याद ने बरकत वाला बना दिया है, क़ुर्बानी और ईसार के उन शानदार सालों में दोबारा ज़िन्दगी बसर करना और अपनी रूह को उस आसमानी नूर से मुनव्वर करना है जिसने तमाम ज़मीन पर उजाला कर दिया था। लेकिन सिर्फ इतना ही नहीं है। और बातों के अलावा हज उनमें इत्तेहाद व इत्तेफ़ाक़ भी पैदा करता है। अगर कोई चीज़ मुसलमानों की बिखरी ताक़तों को एक और उनके अन्दर हमदर्दी पैदा कर सकती है तो वह हज भी है। इसकी बदौलत उनको वह मरकज़ हासिल होता है जिसके पास वह पूरी दुनिया से आकर जमा होते हैं। यह उनके लिए (एक दूसरे से) मिलने जुलने, पहचान बनाने, ख़यालात का तबादला करने और तजुर्बों का मुक़ाबला करने और आम कामयाबी और कामरानी के लिए अपनी कोशिश को एक करने का एक सालाना मौक़ा देता है। जगह की दूरी यहाँ पर दूर हो जाती है। फ़िरक़ों इख़्तेलाफ़ात नज़र अन्दाज़ कर दिये जाते हैं।

इस ईमानी बिरादरी में जो मुसलमानों को एक बड़ी भाईचारगी की शक्ल में एक करती है और अपनी शानदार मीरास की ख़बर देती है, नस्ल और रंग के फ़र्क़ का नाम व निशान भी बाक़ी नहीं रहता।

जब मज़हबी फ़राएज़ ख़त्म हो जाते हैं तो हर मुल्क के ताजिर तिजारत के मामलों पर बातचीत करते

बक़िया..........पेज 13 पर

यह सूरह उस वक़्त नाज़िल हुआ जब काफ़िरों ने इस्लाम को बढ़ते हुए देखा और उसकी तरक़्क़ी पर नज़र की तो सोचे कि क्यों न रसूल[स०] से एक समझौता कर लिया जाए जिसमें अपनी इज़्ज़त भी बाक़ी रहे और फिर इस्लाम से जुड़ भी जाएं यह सोचकर वह रसूल[स०] के पास आए और कहा कि आइये हम और आप एक समझौता कर लें एक साल या कुछ दिन आप हमारे ख़ुदाओं की इबादत कर लीजिये फिर हम एक ख़ुदा की इबादत करें। जब रसूल[स०] इस पर राज़ी न हुए तो उन लोगों ने कहा कि अच्छा एक दिन सिर्फ़ आप हमारे बुतों की पूजा कर लीजिये उसके बाद फिर हम ज़िन्दगी भर आपके ख़ुदा की इबादत करते रहेंगे। इस सूरह में इस पेशकश का जवाब दिया गया।

अगर ज़ाहिरी और सतही तौर पर ग़ौर किया जाए तो सियासी एतेबार से अगर रसूल[स०] सिर्फ़ एक दिन के लिए (अल्लाह की पनाह) बुतों की पूजा कर लेते तो एक बड़ी जमाअ़त इस्लाम में दाख़िल हो सकती थी और जमाअत भी वह जमाअ़त जो बार-बार रसूले इस्लाम[स०] को तरह-तरह से तकलीफ़ें और अज़ियतें पहुँचाया करती थी। इस्लामी तबलीग़ और इस्लामी क़ानूनों की तरह-तरह से जड़ काटने की कोशिश किया करती थी जिससे बहरहाल तबलीग़ में एक बड़ी रुकावट पड़ जाती थी।

लेकिन अगर ग़ौर किया जाए तो जाहिल काफ़िरों की यह बहुत गहरी सियासी चाल थी अगर रसूले इस्लाम[स०] उनके कहने से मान लीजिए अमल कर भी लेते तो पूरे इस्लामी निज़ाम की शक्ल ही बदल जाती हक़ीक़त में काफ़िर लोग इस्लाम के सबसे बड़े उसूल को तुड़वाना चाहते थे और एक नया उसूल मनवाना चाहते थे।

इस्लाम ने अगर सबसे पहले जिस उसूल की तबलीग़ की वह तौहीद ही तो था एक ख़ुदा की इबादत की तरफ़ दावत ही तो थी। अगर रसूले इस्लाम[स०] एक लम्हे के लिए भी (ख़ुदा की पनाह) काफ़िरों की बात मान लेते तो इस्लाम का सबसे पहला उसूल और अहम उसूल, यानी यह कि इबादत सिर्फ़ ख़ुदा-ए-वाहिद ही की हो सकती है ग़ैरे ख़ुदा की इबादत नहीं हो सकती, टूट जाता और फिर मक़सद कभी हासिल ही न हो सकता था क्योंकि फिर तो काफ़िरों के पास इस्लाम की रद्द में यह एक बड़ी दलील हो जाती कि ग़ैरे ख़ुदा की इबादत की जा सकती है इसलिए जब ग़ैरे ख़ुदा की इबादत हो सकती है तो फिर हम उनको क्यों छोड़ें जिनको सैकड़ों साल से हमारे बाप-दादा पूजते आ रहे हैं। इसलिए इस्लाम का सबसे पहला और आख़िरी अहम उसूल टूट जाता इस बुनियाद पर रसूले इस्लाम[स०] ने साफ़-साफ़ इन्कार करके अपने उसूल का बचाव किया। यही उसूल परवरी क़ानून के मुहाफ़िज़ की ज़िन्दगी में अहम चीज़ है जिसमें पैग़म्बरे इस्लाम[स०] कमाल की आख़िरी मन्ज़िल पर नज़र आते हैं।

⌘⌘⌘

(बक़िया......... फ़ुरू-ए-दीन) हैं और एक दूसरे से लेनदेन करते हैं। फ़ुक़हा और उलमा दीन और फ़िक़्ह के मसाएल पर, साइंसदाँ साईंस की नयी तरक़्क़ियों पर, अदीब अदबियात पर, महाजन लोग मालियात पर और माहिरीने सियासत क़ौमी और बैनुलअक़वामी सियासत पर बहस करते हैं। हज की रस्म मुसलमानों के लिए सिर्फ़ एक पाक फ़रीज़ा ही नहीं है बल्कि मजलिसे अक़वाम, बैनुलअक़वामी इदार-ए-उलूम व फ़ुनून और बैनुलमअक़वामी ऐवाने तिजारत भी है।"

ऊपर दी गई लाइनों में हज के हवाले से जो कुछ बयान किया गया है वह असल में हज़रत अली[अ०] के इस ख़ुतबे का मतलब है:

"ख़ुदा ने तुम पर अपने पाक घर का हज फ़र्ज़ कर दिया, वह घर जिसको उसने लोगों के लिए क़िब्ला करार दिया है, वह वहाँ इस तरह आते हैं जैसे जानवर (घाट पर) और इस शौक़ के साथ उस पर टूटते हैं जैसे जंगली कबूतरों की (टुकड़ी ग़ल्ले पर)। इस हज को ख़ुदा ने बन्दों की उस इन्केसारी का निशान और उस यक़ीन की अलामत क़रार दिया है जो उसकी अज़मत और इज़्ज़त के लिए उनके दिल में है, उसने अपनी मख़लूक़ में से अपनी (आवाज़) सुनने वाले चुन लिये, उन लोगों ने उसकी दावत पर लब्बैक कहा और उसके क़ौल के लिए खड़े हुए जहाँ उसके नबी खड़े होते थे, और (नज़्म व तरतीब के लेहाज़ से) उन फ़रिश्तों से मिलते जुलते नज़र आए जो ख़ुदा के अर्श का तवाफ़ करते हैं, यह लोग तिजारतगाहे इबादत में फ़ायदा हासिल कर रहे हैं। और उसके वादे की जगह मग़फ़िरत जल्दी-जल्दी आगे बढ़ रहे हैं। अल्लाह सुब्हानहू तआला ने इस घर को इस्लाम की निशानी और पनाह लेने वालों के लिए अम्न की जगह क़रार दिया है। उसने वहाँ हज अदा करना फ़र्ज़ किया है, और उसके हक़ को वाजिब कर दिया और उसकी ज़ियारत लाज़मी क़रार दे दी। चुनान्चे इरशाद होता है *"ख़ुदा की तरफ़ से उन लोगें पर अल्लाह के घर का हज वाजिब होता है जो वहाँ जाने की ताक़त रखते हैं। जो शख़्स हज से इन्कार करे तो (याद रखिये) कि ख़ुदा सारी दुनिया से बेपरवा है।"*

⌘⌘⌘